पद्यांजलि

सम्पादक

सुभाष भारद्वाज, चन्द्र कान्त जोशी

पृथ्वीनाथ पुष्प (संयोजक)

जे एण्ड के अकादमी आफ आर्टस, कल्चर एण्ड लैन्गवेजिज
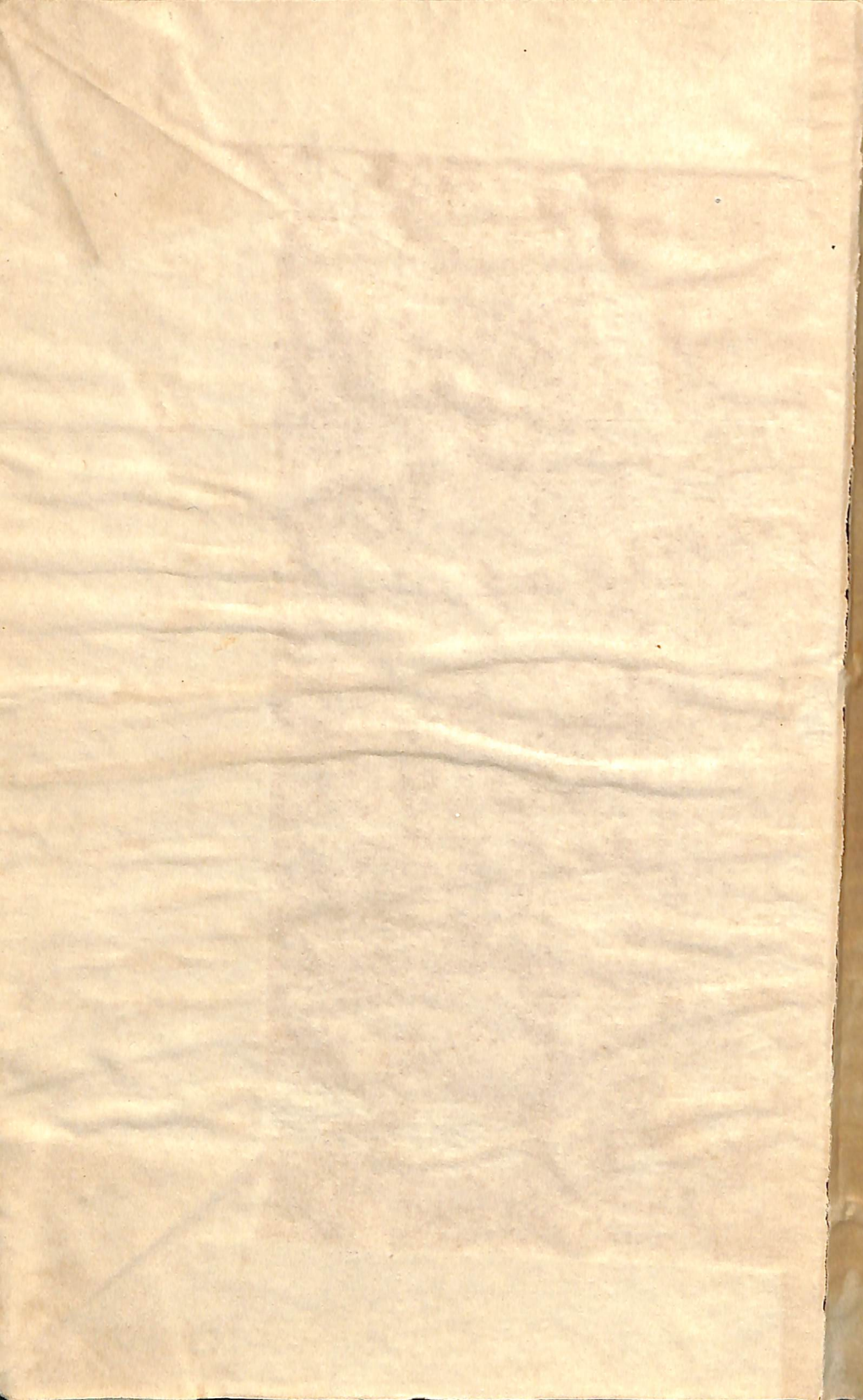
जम्मू ।
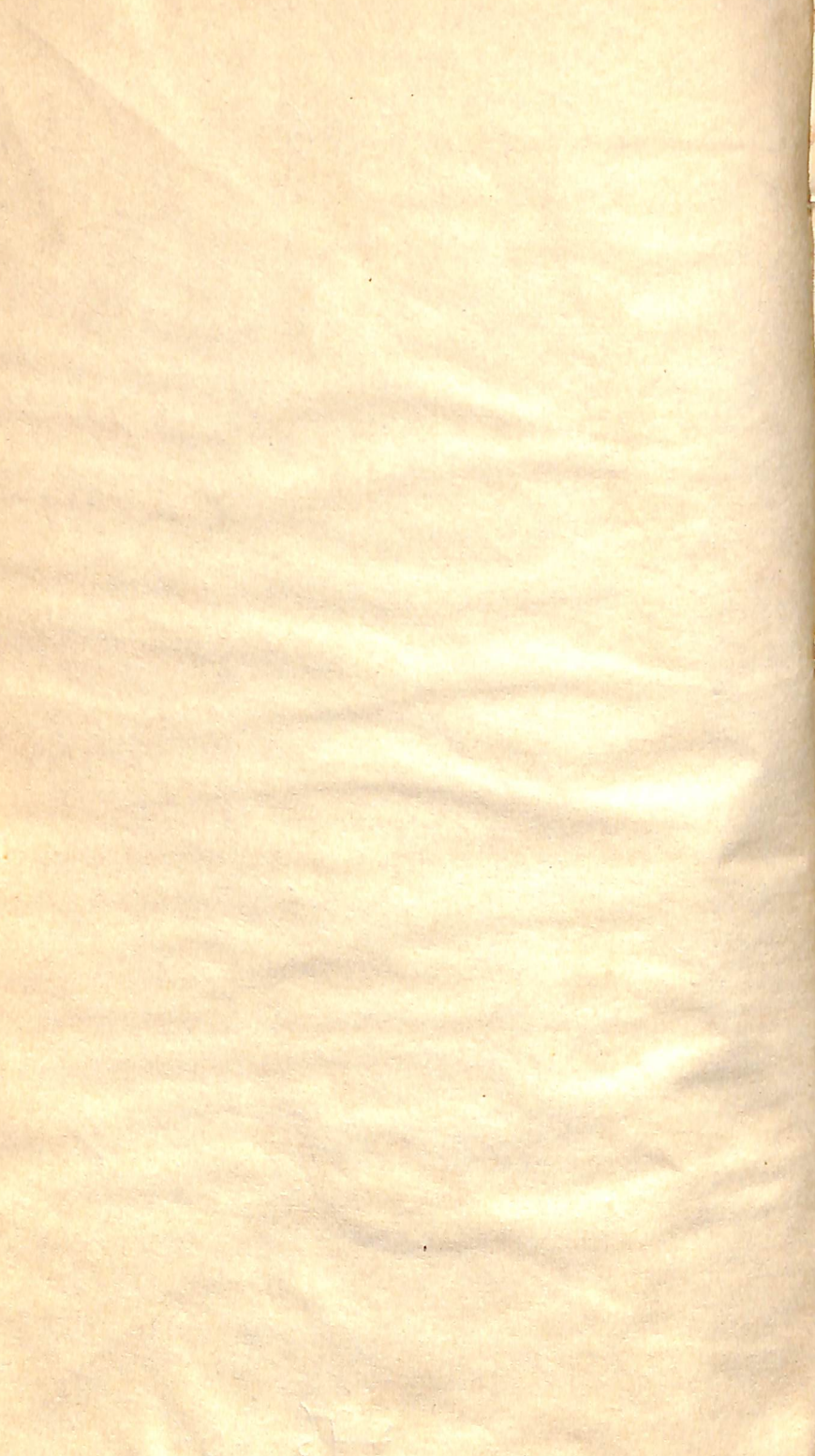
प द्यां ज लि

पद्यांजलि

सम्पादक

सुभाष भारद्वाज : चन्द्रकान्त जोशी

पृथ्वीनाथ पुष्प (संयोजक)

कल्चरल एकेडमी

श्रीनगर

सम्पादकीय

'पञ्चांजलि' सेवा में प्रस्तुत है। भारती मां के चरणों में यह केवल एक श्रद्धापूर्वक विनम्र भेंट-मात्र है। काश्मीर राज्य के हिन्दी कवियों का यह पहला प्रतिनिधि संग्रह है।

संकलन करते समय प्राथमिकता तो उन रचनाओं को देना अभीष्ट था जो भाव तथा कला, दोनों पक्षों से उत्तम हों, परन्तु अपने यहां इस प्रकार का पहला प्रयास होने के कारण कुछ रचनाएं ऐसी भी लेनी पड़ी हैं, जो कलात्मक त्रुटियों के बावजूद कोई ऐतिहासिक महत्व अथवा किसी विशेष काव्य-धारा की झलक प्रस्तुत करती हैं। हां, सभी संकलित रचनाएं अविकल हैं।

यों तो वर्गीकरण की कोई निश्चित विभाजक रेखा नहीं रखी गई है। तथापि सम्पादन की सुविधा के लिए संकलन को चार वर्गों में प्रस्तुत किया गया है। पहले वर्ग में वे रचनाएं रखी गई हैं जिनकी प्रमुख विशेषता बाह्य प्रकृति-चित्रण है अथवा जिनमें अन्तःप्रकृति का भी अनावरण मिलता है। ऐसा करना हमारे प्रदेश की प्रकृति के अनुकूल ही है। दूसरे वर्ग में वे कविताएं संगृहीत हैं जिनका सम्बन्ध राष्ट्र-चेतना तथा मानववाद से है। तीसरे में प्रयोगवादी धारा से प्रभावित रचनाएं संजोई गई हैं। अन्तिम वर्ग में वे रचनाएं दी गई हैं जिनमें वेदना के स्वर तथा गीतितत्त्व का प्राधान्य है।

रचनाओं को अनुक्रम देने की सुविधा के लिए कवियों की जन्म-तिथि को आधार बनाया गया है।

परिशिष्ट के अन्तर्गत कवि-परिचय, प्रथम-पंक्ति-निर्देशिका और कवि-निर्देशिका जोड़ दिये गये हैं।

अन्त में हम उन सभी कवियों के प्रति अपना आभार प्रकट करते हैं जिनकी रचनाएं इस संकलन में प्रस्तुत हैं, तथा जिन्होंने इसके संयोजन और सम्पादन में हमारा हाथ बटाया है।

चन्द्र कान्त जोशी : सुभाष भारद्वाज

आमुख—

जम्मू कश्मीर अकादमी के तत्वावदान में, उस की हिन्दी परामर्श-दात्री उपसमिति (Advisory Sub-Committee for Hindi) के द्वारा नियुक्त एक सम्पादक-समिति ने रियासत के हिन्दी कवियों के सहयोग से यह संकलन प्रस्तुत किया है।

जम्मू-कश्मीर राज्य यद्यपि अहिन्दी प्रदेश है फिर भी हिन्दी भाषा और हिन्दी साहित्य की सेवा और उन्नति के लिए किए जाने वाले प्रयत्नों की परम्परा यहां काफी पुरानी है। यह धरती उन प्रयत्नों के लिए उतनी उर्वरा सिद्ध न हुई हो, यह दूसरी बात है, लेकिन इस से यहां के हिन्दी अनुरागियों का उत्साह कभी कम नहीं हुआ। इस संग्रह में संकलित काव्य-रचनाएं इस तथ्य की पुष्टि करती हैं। इन रचनाओं में आप को जहां विषयों की बहुविधता दृष्टिगोचर होगी, वहां जगह जगह भावों की कलात्मक सुषमा में प्रतिभा की कमनीय कान्ति भी मुग्ध करेगी।

इस संग्रह में स्थानीय हिन्दी-काव्य-साधना का केवल उत्तम अंश ही प्रस्तुत करने का प्रयत्न न करके, गत लगभग दो दशकों में इस क्षेत्र में आने वाले प्रायः सभी छोटे-बड़े साधकों को प्रतिनिधित्व देने की नीति का अनुसरण किया गया है। फिर भी संभव है कि कुछ कवि छूट गए हों। सम्पादक-समिति के लिए प्रत्येक कवि से सम्पर्क पैदा करना और उस की उपयुक्त रचनाओं को प्राप्त करना सरल कार्य नहीं था। उसने जितना किया है वह भी सराहनीय है।

सहृदय पाठक इस संग्रह की रचनाओं को यदि इन तथ्यों को ध्यान में रख कर पढ़ेंगे तो मुझे आशा है कि वे इस प्रयत्न से तृप्त तथा पुलकित चाहे न हो सकें, सन्तुष्ट अवश्य होंगे।

रामनाथ शास्त्री
सदस्य
केन्द्रीय समिति
जम्मू-कश्मीर अकादमी

कर्ण नगर जम्मू
१४ नवम्बर १९६१

अनुक्रम

—सत्यवती मल्लिक

हब्बाखातून[1] की जीवन-संध्या

[नवम्बर १९५१ में आयोजित "हब्बाखातून दिवस" पर अर्पित एक श्रद्धाञ्जलि]

(दो यात्री आपस में बातें करते जा रहे हैं)

ओह ! यह पतझर की शाम,
रुपहले, सुनहले रंगों ने
लिया लहरों को थाम ।
उधर केसर की क्यारियों के नीले-पीले अक्स से
जैसे झलक उठे यह ऊंचे-ऊंचे पर्वत,
और झिलमलि उठा आसमान ।
और इधर विदा-विदा-अलविदा का शोर
मचाते हुए, सांय-सांय करने में
लग गये सूखे पत्तों के ढेर ।
आयगा, फिर कभी नया दौर, ज़माना बदलेगा,
होगा निश्चय ही कभी वसन्त !

1 कश्मीर की लोकप्रिय कवयित्री जो सुल्तान यूसुफ़ शाह चक (१६वीं शती) की प्रेयसी थी । मुगल सम्राट् ने यूसुफ़ शाह को बन्दी बना कर बिहार में नज़रबन्द कर दिया तो "दर्द दिवानी" हब्बा तड़प तड़प कर जान देने से पहिले विरह के करुण मधुर गीत गाती फिरी ।

किन्तु हो चला, भाई, आज तो
इस सुन्दर वर्त्तमान का अन्त !

० ० ० ० ० ० ०

कहते कहते यूं राहगीरों ने
अपना अपना सामान सब समेटा ।
फिर भरी एक ने आहे-सर्द
और अचानक ऊपर देखा
अरे ! यह ऊंची-ऊंची रूखी-रूखी चट्टानों पर
लेटी है सुकुमारी, वैरागिन सी कौन ?
न तन पर वस्त्र, न मुख पर हास,
उलझी हुई केश राशि,
हाय, यह सुन्दर नाज़ुक देह !
कैसे लोट रही धूल में
किन्तु अधखुली कमल की पंखुड़ियों सी दो आंखें
टक-टकी बांधे
मानो रही हों खींच
तस्वीर गतजीवन की
और लबों से निकल रहा है
हा ! प्यारे वतन, हा ! काश्मीर !
हैं ! यह तो केसर की कली ही
हमारी प्यारी 'ज़ून'[1] है !
अरे, यही तो स्वर्गभूमि की
सुन्दर मलिका हब्बा खातून है !
खोया है पति, पुत्र और प्रिय स्वदेश;

1 ज़ून = ज्योत्स्ना; सुल्तान यूसुफ़ शाह चक की प्रेयसी बनने से पहिले हब्बाखातून का नाम ।—(सं०)

जिनकी याद में इस की सांसों ने
लेकर यास्मान, गुलेलाला,
नरगिस, बनफशा और झरनों, नदियों,
झीलों के सुरों में
मधु ढाल रचा है संसार निराला।
जिसके मीठे गीतों में गूंज रही हो मानो बुलबुल।
पी कहां ? पी कहां ? कह भरता हो
'शीन पी-पी-पी'[1] अपने स्वर।
सारी घाटी में गूंज गये रे !
यह गीत अमर !
जिनकी एक-एक नई तान पर
पड़ गए फीके गन्धर्वों के सौ सौ गान ;
पार्वती का यह उजला रूप, सतीसर का मान !

० ० ० ० ० ० ०

लेकिन क्यों यह आगे नहीं बढ़ती,
न पीछे मुड़ कर ही देखती है,
एक ओर तो चार कदम पर इस का प्यारा
पद्मपुर,[2] वह चन्द्रहार का मधुवन,
बिखरा पड़ा है इस कोमलांगी का
जहां बचपन और यौवन।
इसी भांति एक सांझ जहां
प्रणय का वरदान लाई थी।
प्रथम-मिलन, प्रणय कहें राजतिलक

---

[1] शीन-पी-पी=बर्फीले जाड़े का आवाहक पंछी जिस की चहचहाहट में शान-ने-पे-पे (अर्थात् 'बर्फ, गिर री गिर !') की ध्वनि निकलती है।—(सं०)

[2] वर्तमान (केसर-भूमि) पाम्पुर

या मधु-विष के से वर्षों का
सामान खिला पाई थी।
वे देखो, वे देखो!
झलक रही, सामने गुलमर्ग की
हिम-मण्डित 'संगरमाल'[1]।
खोजा था राजा-रानी ने जिसे
मन-प्राणों में मदिरा ढाल!
पर...न.. न...न वह नहीं जायगी!
स्वाभिमानिनी, यह पुत्री है प्रकृति की,
पर्वतांचल में यदि मिल जाय एक
घूंट चश्मे का जल, फूल की
अगर एक पंखुड़ी, तो मां धरती की
गोदी में सुख से थपकी पा
सो जायगी।
ऐसा कहते कहते शाम हो गई,
और पिकवदनी, मृगनयनी वह
सुख-शान्ति से वहीं सो गई।
आओ, हरे-भरे दूसरे टीले पर,
घने पेड़ की शीतल छाया में
फूलों की सेज इक बना दें
और शांति से इसे दफना दें।
सुकुमारी है, शहज़ादी है,
स्वर्गपुरी की इन्द्राणी अथवा
मलिका है नाज़िम की

1 शिखरमाला

पर पत्थर सी यह संगदिल
और फूलों सी नाज़ुक मां यह,
छूते भी तो डर लगता है !
आओ, सब मिल करें परिक्रमा
और दें आखिरी सलामी।
यही हमारी 'ज़ून' हमारी प्यारी रानी !
शाहंशाहों, राजाओं रानियों की कब्रों पर
यद्यपि मकबरे, ताज-महल बनते हैं
लेकिन, लेकिन
कवियों, कलाकारों, संगीतज्ञों की
समाधि पर तो तर आंखों से
सिर्फ दो फूल चढ़ा करते हैं !

० ० ० ० ० ० ०

होगा यदि कभी देश स्वतन्त्र, तो
फिर बहेगी हवा नई,
फूलेगा नव-वसन्त,
जागेंगे इस देव भूमि के
यदि कभी पददलित नर-नारी;
पूजा की थाली ले आएंगे वीर-वर,
कोई शेर-नर, पौरुष भर ले फूल-हार
अंजलि चढ़ाएंगे।
गाएंगे गन्धर्व-जन वीणा-सन्तूर ले,
लेखक, शायर, कलाकार भर भर
अश्रु पुलकित हो जाएंगे,
और बेटियां कश्मीर की
जयजयकार कर आयंगी ;

कहेंगी: थी एक बहादुर रानी
स्वतन्त्र देश की पिछली एक निशानी।
और फिर प्रतिध्वनित हो उठेगी
टकरा टकरा कर गिरि-शृंगों से
इस कवयित्री के, संगीतज्ञता के
गीतों की लड़ियों में कश्मीर की मधुर कहानी!
तब भी साक्षी होंगे पर्वत, यह केसर,
यह नीला-पीला आसमान।
उछलेगा लहरायगा गर्व से
झेलम का जल
और बरसाएगी, सुधा, इन्द्रपुरी से
इस अलका पर पूर्णिमा की धुली-धुली चांदनी!

(श्रीनगर नवम्बर १९५१)

—सत्यवती मल्लिक

जाने दो ! मुझे जाने दो !

जब भी दूर, अति दूर चली जाती हूं
एकान्त, शून्य की खोज में
ढूंढता फिरता न जाने क्या
मेरा अस्थिर, विकल मन
विश्व के सब बन्धनों को काट कर
मानो, अपने से ही नाता तोड़ कर !

और जब मेरे साथी पुकारने लगते हैं
विह्वल, व्याकुल हो कर—
'लौट आओ, घर आओ,
बढ़ती चली जाती हूँ आगे-आगे—
अधीर-उन्मत्त सी
परवाह नहीं करती-उनके—
बुलाने की, उनके उदास मुखड़ों की
आज सब छोड़-छाड़ कर
जाने दो, जाने दो, मुझे जाने दो !
अन्तहीन ज्योति झिलमिला उठती है
हिम-कणों पर छा जाता है
अनन्त शान्ति का साम्राज्य !

फुंक जाते हैं स्निग्ध मेघ,
निर्जन, नीरव सन्ध्या
और मेरा शून्य, स्तब्ध चित्त !
और क्रमशः मधुर मूर्तियां साकार हो उठती हैं
गूंज उठते हैं उनके मधुमय बोल
मुखर हो उठते हैं स्नेह के क्षण
और मेरा प्यासा मन
पुकारने लगता है—"रुको ! रुको !!"

० ० ० ० ० ० ०

धन्य हो वह पुण्य-घड़ी
मंगलमय हो वह जागरण
रोमांचित हो उठे बार बार मेरा,
रिक्त हृदय—
शत-शत स्मृतियों से भर उठें
मेरी वीणा के सभी राग;
मेरे प्राणों में झनझनाती रहें
आश्रय पाती रहें
उनकी छलछलाती—
निर्निमेष आँखें !

(अलपथर, १९३९)

—(स्व०) दुर्गाप्रसाद काचुर

पंकज

जल के अरमानों का सार
जल देवी का चित्रित प्यार
मन्द समीरण का सुविकार
हृत्तन्त्री का कोमल तार
सरवर के हिय का तू हार !

बाल कुसुम का रे तू प्राण
अवलम्बी शिशु सा नादान
उलझी-अलक-सुगन्ध समान
सुलझी मृदुल सुरीली तान
मादकता का मधु-आख्यान !

प्रकृति का साक्षात् विनय
दूर गीत की सुमधुर लय
शीतलता का वर संचय
दीन कीच का भाग्योदय
संस्कृति का रसपूत हृदय !

—(स्व०) पुरुषार्थवती

निर्झर

सदा दृग-जल से रोता विश्व
हृदय तुम देते अपना चीर,
कहाँ पाओगे प्रेम अनन्त
बहा कर अपना मानस-नीर ?

खींच कर स्वर लहरी के बीच
वेदना के सूने उद्‌गार,
निरन्तर देते हो सन्देश
नहीं पाते हो फिर भी पार।

हृदय करता है हाहाकार
किन्तु रहता है मुख अम्लान,
प्रेम-पथ करते हो निष्कण्ट
थाम कर आँखों का तूफ़ान।

व्यथित-मानस-पल्वल के बीच
जभी झिल-मिल करती है चाह,
खींच कर उच्छ्वासों की आड़
रोक लेते थे धीमी आह।

साधना में प्राणों को छोड़
कभी पाओगे स्नेह अनन्य,
मौन जब निकलेगा संगीत
मुग्ध वे घड़ियां होंगी धन्य ।

—(स्व०) पुरुषार्थवती

लक्ष्य हीन राही

सांझ हुई अब लौट चले हैं
पक्षी गण मतवाले,
अरुण-दीप्त पश्चिम ने मद के
छलका डाले प्याले।

बिखर चुकी हैं पूर्व-प्रान्त में
आशाओं की लड़ियाँ
किन्तु निहित हैं मुग्ध उसी में
वे सोने की घड़ियाँ।

विलय प्राय हो गये व्यक्त भी
इस निस्तब्ध निशा में,
एक तुम्हीं बस चले जा रहे
उस अस्पष्ट दिशा में।

उठती हैं चंचल अतीत—
स्मृतियां रह २ कर मन में,
हंसना या रोना न सुनेगा
कोई निर्जन वन में।

उस अदृष्ट की आशा में
कितनी रातें बीती हैं,
इच्छा और प्रतीक्षा, मिट कर
भी हारी जीती हैं।

बुझा न सकतीं अश्रु-कणों से
लिपट लिपट कर आहें,
धधक रही हैं सीमा पर वे
"निष्ठुर दीन" चितायें।

व्याकुल पीड़ा कांप कांप कर
सहम रही है अपने में,
भुला सकेगी भटक भटक कर
निर्मम ममता सपने में।

राही! छोड़ सकोगे कैसे?
आखिर फिर भी चलना,
कठिन लौटना है उतना ही
जितना आगे बढ़ना।

—पृथ्वी नाथ पुष्प

नवजीवन

बसुधा के मुरझांए मुंह पर
माधव नव आभा ले आया
पतझर से पथराई आंखों में
सोया चेतन अंगड़ाया

खलिहानों की सूखी ऐंठी
चमड़ी को उलझी झुर्रियों में
नवजीवन की हरियाली ने
यौवन को साकार दिखाया

जाड़े की कर्कश जड़ता से
पीडित शोषित पौधों के
हिय में वासन्ती मनुहारों ने
जीने का अनुराग जगाया

कुसुमों की मृदु मुस्कानों ने
मानव के बहरे कानों में
नवयुग की नव ललकारों का
नीरव नूतन सोज़ सुनाया

चमकीली धूपों की छब से
भीनी फुर्तीली पवनें भी
जागृति का नर्तन करती हैं—
कण-कण में नवजीवन आया

पर ठिठुरे श्रमियों के भी
जीवन को मधु सरसाएगा क्या
शोषण के भीषण जाड़े से
धरती ने छुटकारा पाया ?

—(फर्बरी' ४२)

—सुभाष भारद्वाज

कुछ तो सुन !

सुन रे, भिक्षुक !
अर्ध-नग्न !
भग्न झोंपड़ी के वासी !
भूखे नर !
यह तेरा सूखा तन,
घायल मन
टपक रहा है।
अंग अंग से
धूल सना क्रन्दन ;
रे ! शस्य-श्यामला
भारत-भू के
भूखे नन्दन !
त्रस्त, ध्वस्त
यों अस्त-व्यस्त अलमस्त
यह पग तेरे कमज़ोर
रूढियों की

गहरी दल-दल में गड़े हुए ।
करते रहते हो
अपने ही
मुरझाये-झुलसाये
मन में गुन गुन !
ओ, कुछ तो सुन !
मेरी भी सुन !
रे, गीता, सीता के अफसाने
लम्बे चौड़े वेद
उपनिषद् औ' ब्राह्मण,
ज्ञानी रचित
पुराणों के भण्डार,
ज्ञान आख्यानों के,
अनन्त के ज्ञाता
सन्त महन्तों के
मुख से झुक-झुक
सुनने वाले,
कुछ तो सुन !
मेरी भी सुन !

मैं कवि हूं—
शायद इसी लिये
आतुर हूं तुझे सुनाने को
समझाने को
कि शायद
इसी लिये बेचैन

अपने उर के
दारुण दर्दीले चित्र
तुझे दिखलाने को।
मुझे ज्ञात है—
तेरी मेरी जंजीर एक है,
पीर एक है,
तेरी मेरी
आँखों में सावन एक,
बरसता नीर एक है ;
देख मेरे भी उर में—
घाव वही,
सहमे-सहमे भाव वही,
रूठे मुरझाये चाव वही हैं
तेरी मेरी है
काल कोठरी एक
घिरी हम दोनो के चहुँ-ओर
समुन्नत औ' दुर्गम
प्राचीर एक है।
मैं कवि हूं,
लेकिन सूख गया जल
मधु-भावों के झरणों का ;
मैं भूल गया हूं—
गति का, यति का ध्यान,
गीत की बुनने 'की विधि'
उपमाओं अनुप्रासों से

अनुप्राणित कर
चमकाना उनके चरणों का ;
मेरे मन का
रोमाँस अभावों ने नोचा
नीलाम हो चुका है
मेरी मुस्कानों का ।
अब ज्योति-हीन
हो चुके नयन, असमर्थ
निरख नव-रूप
चौंक-चुंधियाने को ;
नीरस, फीके
इन उपमेयों के लिये
जुटाना कठिन हो गया है
अभिनव उपमानों का ।
लेकिन, अब भी
कविता-प्रेमी
मिल जाते हैं कहीं कहीं
आग्रह करते हैं
रचना नई सुनाने का ;
लेकिन, अब उन्हें
सुनाऊं क्या ?
मैं गाऊं क्या ?
जब गुमे हुए हैं भाव
अगाध अभावों में,
जब कटे हुए हैं पंख

मधुर अरमानों के,
जब उर ही
मरघट के समान
नीरव, नीरस औ' रिक्त,
पड़ा अतृप्त
अधर पर लाऊं क्या ?
मैं भूल गया हूं
बात जाम की
साकी की
अंटी में दाम नहीं
महफिल में आऊं क्या ?
मैं गाऊं क्या ?
कि अब तो
लौट आ गई है फिर से
कविता मेरी—
अलबेले राजकुमारों की
राजसी महफिलों से,
ऊंचे दरबारों से।
कि अब यह मुक्त हो गई
युगों युगों के
घिसे पिटे लय-ताल,
छन्द के बन्धन से।
कि नाता तोड़ चुकी
स्वर्गीय काल्पनिक नन्दन,
चाँद, सितारों से।
कि आज चेताया है

फिर से इसको
तूने अपने
अगणित अश्रु-मुक्ताओं,
शीतल निःश्वासों,
इन दारुण हाहाकारों से।
पहचान लिया
दायित्व आज मैं ने अपना
देखा करते
हर रात अन्धेरी कुटिया में
तुम जिसे,
आज सुन्दर सपना
वह तेरा
कर के सत्य मुझे दिखलाना है।

बस हुआ
आज से मैं तेरा
मेरे मुंह का
हर बोल
धधकती एक ज्वाल
कि मेरी कविता का
हर एक चरण विस्फोट,
कि लोहा लेने को
आकुल मेरी हर साँस,
युगों से चली आ रही
इन भीषण पतझारों से।

—पृथ्वीनाथ 'मधुप'

ओ सलोनी !

यह दिया मेरा कभी भी बुझ न पाये
ओ सलोनी ! तू इसे संभाल रखना।

कब छिपा तुझ से कि कितने ही युगों से
रह उसासों के जगत में दिन बिताये
आँसुओं में घोल कर अरमान अपने
इस कंटीले रास्ते पर हैं बिछाये।
कब छिपा तुझ से कि कितने कण्टकों की
है बुझाई प्यास, अपना खून दे कर
और कितनी बार, होगा याद तुझ को
है घड़ी वह आ चुकी हा ! मौत ले कर।
तब कहीं अपनी अंधेरी ज़िन्दगी में
बाल पाया हूँ दिया : नन्हा सुमन्जुल।
अब कहीं तमतोम से घबरा न जाये
ओ सलोनी ! तू इसे संभाल रखना।

है इसे जल कर अकम्पित, दूर करना
तिमिर के इस आवरण को जो कि घेरे—

कल्पनांकित; मधुर, रंगीले, मनोहर—
सुखद, मादकता लिये—उर-चित्र मेरे।
है इसे आलोक फैलाना डगर पर
रख कदम जिस पर कि हम दो जा रहे हैं
चिर युगों की साध : सपनों के जगत् को
बन जहां साकार सपने भा रहे हैं।
पड़ न जाये मन्द इसकी लौ ज़रा भी
भर इसे अविरल स्नेह की धार से तू
हो अचंचल रात दिन यह जगमगाये
ओ सलोनी ! तू इसे संभाल रखना।

देख जलती जगमगाती ज्योत इस की
सनसनाता, आ किसी अज्ञात दिशि से
झूमता, दल-बल सहित इस पर घिरेगा
औ' करेगा भीत अपनी तीव्र गति ले—
फिर अचानक धूलि से भर कर गगन को
और कम्पा कर धरा के वक्ष को भी
भर भयानक रोर नभ में, गुरु प्रभंजन ;
लीलने आजायगा इस दीप को ही—
तब अतुल उत्साह भर कर हृदय में तू
सुभगि ! स्वांचल ओट में इसको छिपाना
रह जहां आलोक के यह गीत गाये
ओ सलोनी ! तू इसे संभाल रखना !

यह दिया मेरा कभी भी बुझ न जाये
ओ सलोनी ! तू इसे संभाल रखना !

●

—दीनू भाई 'पन्त'

जुगनूं

देख जुगनु, डर न जाना
तम सघनतम कर न जाना !

रात मावस की, घिरीं घनघोर सावन की घटाएं,
प्रलय नागिन सी छुटी झंझा, कुपित शिव की जटाएं
जड़-सचेतन सब तिमिर में आप अपना खो चुके हैं,
चांद तारे तक अंधेरे के कफन में सो चुके हैं
तू अकिंचन ही सही, पर कसकता तम के हृदय में,
हे विभासुत, रोशनी का नाम लज्जित कर न जाना !

देख जुगनु, डर न जाना
तम सघनतम कर न जाना !

दिल में हिम्मत हो तो विपदाओं के घेरे कुछ नहीं
दिल ही कायर हो तो सोने के सवेरे कुछ नहीं
चाह आज़ादी की है तो मौत का डर कुछ नहीं
एक चिनगारी भी है तो तम का सागर कुछ नहीं

तेरे दम से अब भी जीवित है सवेरे की उम्मीद
एक तू आशा-किरण है घुट-घुटा कर मर न जाना !

देख जुगनु, डर न जाना
तम सघनतम कर न जाना !

तेरा लघु जीवन चुनौती है अँधेरे के लिये
मौत के मुख में भी जल सकते हैं जीवन के दिए
इस प्रलय में भी उदय की स्वर्ण आशा तू तो है
एक जलते कवि-हृदय की मौन भाषा तू तो है
कुछ भी हो संघर्ष तेरा अमर, अटल, अपार है
बेबसी के आँसुओं सा थरथरा कर झर न जाना !

देख जुगनु, डर न जाना
तम सघनतम कर न जाना !

—(अगस्त ; ४२)

—पृथ्वीनाथ पुष्प

नवनिर्माणों की वेला !

नवनिर्माणों की वेला है
सुब्ह कहां, रे शाम कहां,
आज़ादी की सजग डगर पर
नींद कहां, आराम कहां !
पत्थर के बे-सुर उर में भी
निर्झर ने थिरकन भर दी
गतिमय की उल्लास-दिशा में
यति है, पर विश्राम कहां !
बर्फ़ीली जड़ता के नीचे
बेसुध वासन्ती सुषमा
जाग उठे जिसकी चितवन से
वह चेतन निष्काम कहां !
चन्द्रलोक जाने को आतुर
प्राणी ! जाओ पर सोचो तो
आंख जमी क्यों इस धरती पर
नभ की, ऐसा धाम कहां !

मानव की साधना अथक है
मानवता की जोत अमर
उद्धत रावण को जो टोके
वह नवयुग का राम कहां !

नील गगन में पञ्चशील के
लुकछिप कर उड़ने वाले
अंधड़ का जो गर्व बुझाए
वह शीतल घनश्याम कहां !

अन्तस्तल से उमड़ न आए
भावों को प्रेरित न करे
गद्यपद्य वह वाक्य जाल है
काव्य कहां, व्यायाम कहां !

(२६ जनवरी ; ६०)

●

—चन्द्र कांत जोशी

१८५७

पहले खून बहा करता है अमर-शहीदों का
फिर ही दिन आता है दीवाली का, ईदों का !

सन्-सत्तावन में लिखी गई थी यही कहानी
बलिदानों के भेंट चढ़ा करती सदा जवानी
इक पागलपन था बाल-वृद्ध, युवकों में छाया
एक लक्ष्य पर मरे मिटे जनता राजा, रानी

जो बीज रक्त के बोये वह व्यर्थ नहीं जाते
उनके सिंचन से ही खिलता बाग उमीदों का !
पहले..........

हा ! दूर फिरंगी को करने का काम बड़ा था
काला तोपों के सन्मुख छाती तान खड़ा था
यों गोलों की बौछार हुई, गोली भी बरसी
पर हृदय, हृदय में भारत का अभिमान अड़ा था

हिन्दू मुस्लिम, मन्दिर-मस्जिद मिलकर एक हुए थे
बुरा हुआ पर पापी गद्दारों गीधों का ।
पहले........

अनगिन देश-भक्त जिनका कोई नाम नहीं है
पता आज जिनका, ठौर, ठिकाना ग्राम नहीं है
बस एक लगन थी विजय-पराजय से क्या मतलब
सत्य बात कि आज़ादी का कुछ दाम नहीं है

भूख प्यास भी सह ली जंगल जंगल घूमे
किन्तु प्यार से गले लगाया फाँसी का झोंका
पहले..........

गोरे की नादिरशाही से हाहाकार मचा
लक्ष्मी ने 'चण्डी' का रूप धरा था ताप तचा
नाना, टोपि, पन्तिया शाह बहादुर भी गरजे
मरण इक त्योहार हो गया, रण का रोष जगा

'बेड़ी काटो, कारा तोड़ो' का जनरव गूँजा
यह प्रण था सन सत्तावन के कुल-वीरों का
पहले..........

यह कुर्बानी का लम्बा इतिहास सुहाता है
आज़ादी के बदले जीवन तुच्छ बताता है
आज़ादी का जो दीप जला जलने दो जी भर
इस आभा से भारत ज्योतित होता जाता है।

सदा सुरक्षित इसको अपने आँचल में रखना
इन दीपों की चमक-दमक है पर्व शहीदों का!
पहले.........

समय बदल जाता शब्दों के अर्थ बदल जाते
आज क्रान्ति कहते जो, थे ग़दर कभी कहलाते

जिनको दण्ड मिला वह सब पूजा के अधिकारी
इतिहास बदलता आज़ाद देश गौरव पाते

आज़ादी के इस प्रथम द्वन्द्व के इस पुण्य दिवस पर
श्रद्धा के फूल लिये गाओ गीत शहीदों का !

पहले खून बहा करता है अमर शहीदों का
फिर ही दिन आता है दीवाली का ईदों का !

●

—श्याम दत्त पराग

पतन और उत्थान

आज मानव दानवों के चरण-चिन्हों पर चला है
आज अमृत के सरोवर में गरल फूला फला है
आज धरती पर अनल के बीज बोए जा रहे हैं
आज मानव के परम सौभाग्य सोए जा रहे हैं
आज युग को देख मानवता स्वयं शरमा रही है
आज अम्बर में निराशा की घटा चहुं छा रही है
फूल ये सुकुमार से क्यों मौन हैं, मुरझा रहे हैं
मधुप, जाने क्यों, चतुर्दिक बेसुरा सा गा रहे हैं
चाँद की यह चाँदनी जाने न क्यों है आज भाती
दम्भ-प्रतिभा हर तरफ़, क्यों दीखती है, मुस्कुराती
आज युग की नाव है मंझधार में, इसको संभालो
आज पृथ्वी फिर रसातल में गड़ी सी है, निकालो
आज रज को पंख दो आकाश का मस्तक सजाओ
आज भू-शृंगार करने तारिकाओं को बुलाओ
दम्भ का अस्तित्व हर लो, ज्ञान का दीपक जलाओ
हर मनुज को दृष्टि देकर मनुजता फिर से लखाओ

कौन कहता देवतापन भाग्य का ही खेल सारा
कौन कहता उच्च-आसन भाग्य ने पहिले निहारा
रत्न धरती पर लुटे हैं, मिल सभी सम्मान कर लें
भूमि के इन कंकरों से इक नया निर्माण कर लें
साधना से ही जगत में सफलता के फल मिलेंगे
प्रेम की वंशी बजेगी, एकता को स्वर मिलेंगे
मूक को वाणी मिलेगी ; पंगु गिरिवर पर चढ़ेगा
विश्व का प्रत्येक मानव ज्ञान की भाषा पढ़ेगा
भावना कर्तव्य को उन्नत बनाती ही रहेगी
योग्यतम की कल्पना उत्कर्ष पाती ही रहेगी

●

—मोहन लाल 'निराश'

कहानियां और इतिहास

कथा कहानी, नई पुरानी, से इतिहास रचा जाता है।
बूढ़ी नानी की नृप-रानी से इतिहस रचा जाता है॥
ढली उमर पर, चिता-कबर पर यह इतिहास रचा जाता है।
शाम-सहर पर, निशी-वासर पर, यह इतिहास रचा जाता है॥

० ० ० ० ० ०

घटना से घटना जुड़ती है, बन जाती है एक कहानी।
जिस के पात्र हुआ करते हैं: तुझ से, मुझ से कितने प्राणी॥
दो दिन यह गाथा चलती है, मिट जाती रख एक निशानी।
ऐसे ही कितने चिन्हों से, यह इतिहास रचा जाता है।

० ० ० ० ० ०

प्रलय निशा कैसे थी बीती ? सृजन-दिवस कैसे था आया ?
श्रद्धा ने बाहें फैला कर क्यों कर मनु को था अपनाया ?
कैसे जन्मे जीव धरा पर ? जीवों में मति कैसे आई ?
बात पुरानी छिड़ जाती है, नव इतिहास रचा जाता है।

० ० ० ० ० ०

कब शैशव ले रोटी भागा ? कब ममता ने देर लगाई—
लौटो, मैं न तुम्हें पीटूंगी, बलि बलि जाऊं किशन कन्हाई !
कब अम्बर से मामा उतरा माटी का पुतला दे जाने ?
मा की ममता, शिशु-क्रीड़ा से, यह इतिहास रचा जाता है।

० ० ० ० ० ०

माटी से माटी जुड़ती है, बन जाता है चंद्र-खिलौना।
कोई मोहन, कोई राधा ; हंसी रती भर, मन भर रोना ॥
खिलने वाली कलि माधव की, झरने वाला फूल शरद का।
सृजन-प्रलय के आख्यानों से, यह इतिहास रचा जाता है ॥

० ० ० ० ० ०

कब मेंहदी थी बनी सुहागन ? कब कुमकुम था बना सुहागा ?
कब चूड़ी सधवा हो गई ? नथ का भाग्य भला कब जागा ?
कब काजल का रूप बना था ? कब पायल ने सोहर गाया ?
प्रहर शगुन के, बात शगुन की, तो इतिहास रचा जाता है।

० ० ० ० ० ०

कब बातों में बात उलझ कर, प्रश्न उठा था, बात उठी थी !
कब प्रियतम को बाट निरखते, दिवस ढला था, रात उठी थी !
कब प्रियतम था निर्मम निकला, कब सपने अपने न बने थे ?
इस पर कवितायें बनती हैं औ' इतिहास रचा जाता है।

० ० ० ० ० ०

अभी अभी जो पायल पहनी, घायल होकर चीख रही है।
अभी अभी जो चूड़ी पहनी, बूढ़ी होती दीख रही है॥

चले बराती डोली लेकर, अरथी लेकर लौट रहे हैं।
शव की बासी कच्ची कलिका से इतिहास रचा जाता है॥

० ० ० ० ० ०

कब धरती पर जय-ध्वनि गूंजी ? कब विजया ने साज सजाया ?
राम-राज्य कब खत्म हुआ था ? किस ने वह जनराज मिटाया ?
कब सुख से दो आंखें सोईं ? कब दुःख से सौ सपने टूटे ?
दृग के छंद, निबन्धों से तो यह इतिहास रचा जाता है।

० ० ० ० ० ०

कब छेनी का सरस परस पा, यह पाहन भगवान् हुआ था !
कब शिल्पी के टूक बनाने, वह मानव शैतान हुआ था !
पुण्य किधर से कब उभरा था ? पापों में धरती कब डूबी ?
खोले जाते भेद सकल ये, औ' इतिहास रचा जाता है।

० ० ० ० ० ०

कलिका से कलिका जुड़ती है, बन जाता है हार सलोना।
जिसकी खुशबू छू जाती है, कर जाती है जादू टोना॥
नयन निरखना रख देते हैं, हृदय धड़कना रख देता है।
जादू जब बोला करता है, तो इतिहास रचा जाता है॥

० ० ० ० ० ०

कब गलियों में पाप पला था ? कब सड़कों पर लूट मची थी ?
कब इस उपवन की कलिकायें, कांटों में अटकी, उलझी थीं ?
कब दामन पर दाग़ लगे थे, कब धब्बों से नाम दबा था ?
इन दाग़ों-धब्बों से ही तो, यह इतिहास रचा जाता है।

० ० ० ० ० ०

ताना बाना बुन जाता है, बन जाता है सेज-बिछौना।
जिस को और सजाया जाता; जड़ कर मोती, मढ़ कर सोना॥
जिस पर जन्म लिया करती है, कोई विष-कन्या, मधुबाला।
नारी से, नारी की गाथा से, इतिहास रचा जाता है॥

० ० ० ० ० ०

कब कौड़ी के मोल बिकी थी, इस धरती की क्वाँरी बेटी?
कब पत्नी ने साड़ी खोली, उस में पति की लाश लपेटी?
कब मन का दीवाला निकला, कब मति ही नीलाम हुई थी?
इन्सानों के खण्डहर से ही, यह इतिहास रचा जाता है।

० ० ० ० ० ०

कब धरती ने सीना चीरा, मन की ज्वाला, पीर दिखाई?
कब अंबर ने माथा फोड़ा, औ' अपनी तकदीर दिखाई?
कब सूरज पर ध्यान गया था, कब चंदा पर आंख लगी थी?
भू-भौतिक तथ्यों को लेकर, यह इतिहास रचा जाता है।

० ० ० ० ० ०

बरन बरन के लोग धरा पर, बरन बरन की बातें होतीं।
बरन बरन की हाट दुकानें, बरन बरन सौगातें होतीं॥
यहां कहीं पर काजल मिलता, यहां कहीं पर कालिख मिलती।
बरन बरन की स्याही से ही, यह इतिहास रचा जाता है॥

—(अगस्त १६, १६५६)

—पृथ्वीनाथ पुष्प

डर लगता है

डर लगता है
सच्चाई से
डर लगता है
सच्चाई जो
सौ-सौ बहकावों में खुल कर
मानव-कुल को
युग-हत्या का
वर देती है !

डर लगता है
हमदर्दी से
डर लगता है
हमदर्दी जो
सौ-सौ कुंठाओं में खिल कर
मानवता के शिव में
शवता
भर देती है !

डर लगता है

रुचिराई से

डर लगता है

रुचिराई जो

सौ-सौ छलनाओं में पल कर

मानव की भव-श्री को

कुत्सित

कर देती है !

डर लगता है

सच्चाई से, हमदर्दी से, रुचिराई से

डर लगता है !

(नव० ६, १९५६)

—यश शर्मा

पतझड़ की यह सांझ

पत्र हीन सूखे पेड़ों से
गले मिल रही
पतझड़ की यह सांझ !
प्रिये ! यह देख
हृदय रो उठता है
और मुझे यों लगता है
जैसे कोकिल के गीत,
भ्रमर की गुञ्जारें,
कलिकाओं का
रूप-सुधा-रस छलकाना ;
एक स्वप्न था
सत्य नहीं था
आँख झपकते ही जो हम से
दूर हो गया !

सोचो तो
क्या आज वही हैं हम
जो आज से पहले थे ?

जो पहले था, सो नहीं रहा
जो बीत गया जो चला गया
वह यौवन था
मादकता थी
चंचलता थी
नूतनता थी
वह सत्य सही
पर सपना था !

बीती बातें स्वप्न सरीखी ही होती हैं
और स्वप्न जब टूटे
आँखें अपने आप ही भर जाती हैं।

जीवन का हर सत्य स्वप्न बन
पल पल हम से बिछुड़ रहा है।
पत्र हीन सूखे पेड़ों से
गले मिल रही
पतझड़ की यह साँझ
प्रिये ! यह देख हृदय रो उठता है !

●

—सुभाष भारद्वाज

परामर्श

ओ, मेरी पगडण्डी के पत्थर, हट जा,

हट जा, हट भी जा !

कहता हूँ लेकिन इसे
कहीं अनुरोध, विनय अनुनय न समझना ;
क्यों कि तुझे मैं नहीं समझता बाधा ;
हैं सशक्त मेरे पग, हूं अभी सजग,
मैं तुझे फाँद भी जाता
किन्तु, तुझे सावधान करने को सिर्फ रुका हूं
कि मेरे पीछे पीछे आने वाले,
तूफान तडित के बने हुए वे लोग,

पत्थरों के दुश्मन,
तुझे उठा पटकेंगे, फोड़ेंगे, टुकड़े टुकड़े कर डालेंगे ;
रास्ता छोड़ अलग होजा
सामना अरे नहीं होगा तुझ से

आने वाले संकट का ।
इस लिये अभी से अच्छा है, हट जा, हट जा, हट भी जा!
ओ मेरी पगडण्डी के पत्थर !

●

—शशि शेखर

दो भाव-चित्र

एक

गीत जो मेरे सिरहाने रख गई है भोर—
खुली बाहों के विकल परिरंभ में
कसते मुझे बन धूप !
छल रहा मुझ को नई किस चौंध से—
किस अर्थमय मुस्कान से यों रूप !
इन्द्र-धनुषों के पिघलते रंग सी
यह आह कैसी प्यास !—
आ रही मुझको डुबाने
अरे, मैं डूबा !
कि डूबे प्राण
डूबा बोध
जैसे मौन की गहराईयों में डूबता है गान !
हो रहा हैं चेतना को
रंग की चल लहरियों पर तैरने का नया-सा आभास !
इन्द्र धनुषों के पिघलते रंग की यह आह कैसी प्यास !

और बाहर कांपती-सी कोंपलों से
झर रही मृदु ओस की आवाज़ :
कौन सा जादू रहा है आज घेरे डाल ?
बांधता मुझको विवश कर, मुग्ध कर, आसक्त कर
कैसा रुपहरा जाल ?
आह यह कैसी पहेली ?
मुट्ठियों में जो नहीं टिकता घड़ी भर
आह यह कैसा फिसलता राज़ ?
धूप यह, यह इन्द्रधनु, यह ओस :
सत्य है, या नहीं है—या
छल रही है दीठ को उस
सामने फैले क्षितिज की कोर !
सत्य हैं, या झूठ है ?—या हैं पहेली—
गीत जो मेरे सिरहाने रख गई है भोर ?

दो

गीत मेरी गोद में जो भर गई है शाम—
समर्पित ऐसे
कि जैसे गुच्छ घायल-फूल का, झर जाए जो चुप-चाप
लग रहा मुझ को कि अस्ताचल बना हूँ
सह रहा हूं डूबना यों सूर्य का निरुपाय
जैसे बोरता हो प्राण को कोई पुराना शाप !
जम रही हैं चेतना पर दर्द की परतें
कि जैसे जम रहा घूमिल अँधेरा दूर के उस मोड़ !
दे सकूंगा मैं स्वयं का दान

यह अभिमान
मन अब भी न सकता छोड़ !
पर बिना कुछ दिए
लगता है मुझे ऐसा कि मैं तो चुक गया हूँ !
(झूठ है वह शृँग—वह गन्तव्य मेरा—लक्ष्य वह अभिराम
प्राप्ति का गौरव निरर्थक दम्भ !)
संशयों के अजगरों से घिरा निज को देख
हो भयभीत मैं तो रुक गया हूं
लग रहा मुझ को कि मैं तो चुक गया हूं !
एक मिट्टी के खिलौने सा अचानक
ज़िन्दगी मुझ को गई है तोड़ !
और बिखरे खण्ड जिसके जोड़ कर हूँ
ढूँढता फिर फिर वही मैं रूप—
जो कि मेरा था—कि जो मैं था—
मगर जो मैं नहीं हूं—
जो कि बस आभास है उस का, कि जो था,—
जैसे साँझ की मिटती हुई—सी धूप,
जैसे शरद का बादल विरस निष्काम !
सत्य हैं ? या झूठ हैं ? या हैं पहेली—
गीत मेरी गोद में जो रख गई है शाम ?

—शशि शेखर

रिक्त !

नहीं है आह्लाद
ज्वार सा निर्बाध
बहकर
(नदी ज्यों बरसात में)
अपरिचय की सभी सीमा लाँघ
खुद को बाँटता जाऊँ
उस का
तुम्हारा
सभी का
हो लूं !
या
वनश्री से निरन्तर
झर रही जो गूँज
छन कर
डाल पातों से
मुदित पाँखी-युगल की

उसी सा
मैं
उस के
तुम्हारे
सभी के मन में
झरूँ
गूंजूं
मुग्ध हो जाऊँ
मुदित बोलूं !

नहीं है आह्लाद।

नहीं है दर्द
(आत्मा का उदित वह पुण्य !)
क्रास पर लटके मसीहा सा कहूँ
लो, बाद में कीलें नुकीली हाथ में ठोंको
तुम्हारे वास्ते मैं तो
घृणा में, कीच में
अपमान में धँस कर
अछूता सत्य लाया हूं
उसे मैं
आज तुम को सौंपता हूँ।
फिर मुझे
सूली मिले, या ताज कांटों का
सभी स्वीकार !
या

(स्वयं को यदि कह मसीहा हो गई हो भूल)
मोमबत्ती की पिघलते पर्त सा ही
कहूं
मैं ने तो सही है आँच
मैं ने ज्योति पाली
और गल कर खुद निरन्तर
बस तुम्हारे ही लिये
ओ, बन्धु मेरे
ज्योति वाही मैं
तुम्हीं को सौंपता हूं आज यह आलोक की थाती
संभालो
दिख जाएंगे तुमको
(अभी तक बन्द थे जो)
द्वार !

पर नहीं है दर्द
तो क्या है ?
आत्मा में बसी जो अनुभुति
उसको, कहो, दूं क्या नाम ?
या कुछ भी नहीं है
रिक्त हूं मैं ?

●

—शशि शेखर

एक खूबसूरत दिन !

आज एक खूबसूरत दिन मुझे अनायास ही मिला

क्वाँरी धूप के अगिनत नर्म चुम्बन
मन की हर टूटन पर बिछल गए
गुच्छ-गुच्छ फूलों के तरल-स्पर्श
बहे और
प्राणों में ँसे-बसे संशय को
धो गए !
'प्यार' : नीले रेशमी रूमाल सा
कौन इस शब्द को आज फिर
सामने मेरे लहरा गया ?
क्षितिज पार करती बन-पाखियों की एक जोड़ी
लगा मुझे
मेरे भीतर भी कहीं
पंख खोल उड़ने लगी ।
छोटी छोटी लहरों में बतियाता सा
झील का जल

जाने क्यों आज मुझे भा गया !
सोचा इस दिन का
इस खूबसूरत दिन का
क्या करूं ?
इसे अपने कोट में फूल सा सजाऊँ
या तुम्हारे जूड़े में इसे भरूं ?
इसे अपने घायल अहम् की
बैसाखी बनाऊँ या पँख ?
इस दिन का
इस खूबसूरत दिन का क्या करूं ?
इस से अपनी निर्वसना कुण्ठाओं को ढकूँ
या
प्राप्ति की पताका बना
मन में कहीं लहराऊँ ?
तुम्हारे माथे पर रंगीन बिन्दी-सा इसे जड़ दूँ ?
या किसी शिशु-भाव को
रिझाने के लिये
गुब्बारे सा उड़ाऊँ ?
इस दिन का
इस खूबसूरत दिन का क्या करूँ ?

° ° ° ° ° °

मैं सोचता रहा, सोचता रहा, सोचता रहा ;
लेकिन
मैं ने कुछ भी किया नहीं

रस का अबाध एक झरना
कहीं से
मेरे लिये फूटा था
मैं ने अँजूरी दी
मगर पिया नहीं
आह ! यही है क्या मेरे संकल्पों का बल ?
आज भी इस खूबसूरत दिन भी
मैं पूरी तरह जिया नहीं !

●

—मोहन लाल 'निराश'

दायरे, और दायरे, और दायरे

पत्थर :—

(यह था तब माटी,
किन्तु हुआ समय,
और समय,
और समय ;
अब है पत्थर,)
आकृति से पत्थर,
प्रकृति से पत्थर ;
पत्थर, बस पत्थर ।

पत्थर से जुड़ गये पंख :
(पंख,—
जो उड़ते हैं,
    उड़ते हैं,
    उड़ते हैं :
उड़ान की होती है गति,
यह गति,

वह गति,
तरह तरह की,
भाँत भाँत की—
गति :
और होती है ऊँचाई ;
ऊँचाई के भी होते प्रकार :)
और उड़ता चला पत्थर ।
पत्थर,—
और उड़ा,
और उड़ा ,
समय हुआ,
और हुआ,
और हुआ ;
यह हुआ :
कि पाँखों से जुड़ गये पत्थर ।
आकृति का पत्थर,
प्रकृति का पत्थर,
पत्थर, बस पत्थर ।
तो पत्थर आ गिरा नीचे :
पतन की होती है गति ।

(आँखों में समाया मानस,
शाँत मानस,
भँवर, न लहरें ;
शाँत, बस शांति सा :)

आ गिरा नीचे कि डुप,
पत्थर पानी में ;
पानी की यह तह,
और तहें,
और तहें :
(पानी की, पानी सी,)
इस तह से होकर—
इस में,
फिर इस में,
और नीचे,
और नीचे,
नीचे ही, नीचे ही, नीचे ही नीचे ।
पड़ गई शांति पर झुरियाँ,
झुरियों के दायरे ;
दायरे,
और दायरे,
और दायरे ।

—(दिसम्बर १४, १९५९)

—पृथ्वीनाथ 'मधुप'

तुम

तुम :
'पोशनूल'[1] का गान
कि जो—
हिम-काल के अवसान पर,
पुष्प-शृंगारित
        डार के ऊपर
अमिय-स्वप्न में
गया गाया ।

तुम :
चिनार की
वायु
और
छाया ;
जेठ के—

---

1 पोशनूल : काश्मीर देशीय कोकिला-विशेष

तपते दिवस की
        दोपहर में,
मैं ने
तुम्हें
पाया ।

●

—रतन लाल 'शान्त'

चिनार

(१)

ये चिनार के पत्ते !
सतरंगी पंखो पर तिरकर
सूर्यदेव से लुक-छिप खिसकी
मधुमय किरणों के ये छत्ते !
ये चिनार के पत्ते !

सुधरी हरीतिमा ने नस-नस में
मोती का पानी ढाला
हर पत्ते, मधु के छत्ते ने
अँगड़ाई ली
मधु-शावक के पंजों ने ज्यों
अपनी रुतअँगुरी खोल दी
तयों ही मधु की लोभी प्यास मेरी
धूप से छिन्नतम अस्तित्व मेरा
खुद जकड़ गया
खुद सिमट गया !

(२)

छाँह चिनार की
तन के घायल, सिकुड़े मन को
समय समय की टीस, दर्द से
(कुछ दुःख वाणी बूझ न पाई
कुछ मस्तिष्क नहीं कह पाया)
राह मिली
राहत पाई
पाई बाँह बहार की
छाँह चिनार की !

—रतन लाल 'शान्त'

खोटी किरणें

सूरज कभी मेरे यहां से नहीं गुज़रा !
अपनी अंधेरी कोठरी के झरोखे से
मैं ने बाहिर झाँक कर
उषा के फूल सम्हालती मालिन से,
और तारों की बंद होती दुकानों से
जितनी भी किरणें खरीदी थीं
वे सब खोटी निकलीं !

मेरे पड़ोस का 'निष्काम' बूढ़ा
और इसकी लटकती झुर्रियों के पीछे से
आती हुई तीखी नज़रें ;
इन दोनों से बचाकर
मैं ने जो सुन्दर सा कमल चुरा रखा था
और जो कई दिन से मेरी कोठरी में
मुर्झा गया था
इन किरणों से ज़िलाया नहीं गया !
मेरे उपहार की थाली खाली पड़ गई

मेरे देवता की तनी भौंहों पर
मुर्झाया कमल चढ़ न पाया
मेरे हताश आँसुओं की जो झड़ी लग गई
ये किरणें उन बूंदों में
इन्द्र धनुष की एक भूली मुस्कान भी
न ला पाई !

मेरे जीवन का संचित अर्थ
व्यर्थ गया
ये किरणें खोटी निकलीं !

—(स्व०) पुरुषार्थवती

विदाई का उपहार

अचिर-संचित, नेही से मृदुल
वही जो थे श्रद्धा के फूल
उन्हीं का मादक सौरभ-सार
बना है हृद्गत धीमा शूल !

मचलती और छलकती चाह
हृदय की पीर बनी-बेपीर,
सुखद, सोने-सा शुभ्र अतीत
झलक कर करता अधिक अधीर !

शून्य से लिपट रही है आश, बिखरता जाता है विश्वास।
पथिक ! क्या ले जाओगे संग, यही 'दो' अश्रु-भरे 'निश्वास॥

●

—दीनूभाई पन्त

दीपावली

पथ पर दीप जलाने वाले !

जिन को दीप दिखाया तूने, जीवन ढंग सिखाया तूने
कितनी मंज़िल पार कर चुके, तेरे पीछे आने वाले
पथ पर दीप जलाने वाले !

सूने वन में, कबरों के ढिग, तुझ को दीप जलाते देखा
बड़ के नीचे, नदी-घाट पर, तुझ को दीप बहाते देखा
झिल-मिल झिल-मिल मस्ज़िद तेरी, जग-मग जग-मग मन्दिर देखा
तेरा दिल क्यों इतना काला, जग आलोकित करने वाले
पथ पर दीप जलाने वाले !

कहाँ गई वह तेरी गीता ? जग को राह दिखाने वाली
जीव-मात्र पर समदृष्टि का सब को पाठ पढ़ाने वाली
अरे मुसल्मां दुनिया भर में मिल्लत का दम भरने वाले
तेरे घर यह आग लगी क्यों ? जग की लगी बुझाने वाले
पथ पर दीप जलाने वाले !

अचरज घना अंधेरा देखो, भूला हुआ सवेरा देखो
फूटी-फूटी किस्मत देखो, दीपक तले अंधेरा देखो
एक ब्रह्म के इधर उपासक, एक खुदा के वे परवाने
भटक गए हैं खुद ही देखो, भूले पंथ सुझाने वाले
पथ पर दीप जलाने वाले !

—(१६४४)

—गंगा दत्त शास्त्री 'विनोद'

सोच रहा हूँ मौन !

(१)

जीवन की काली रजनी में,
छिप गया इसी का सुप्रभात,
प्राणों की मुकुलित कलियों पर,
हो रहा व्यथा का तुहीन पात,
चिन्तित हूं इस जीवन में
यह कैसा संसार ?
यहाँ नहीं मिलता क्षण भर
जीने का अधिकार ।
फिर क्या होगा अन्त ?
इसी में मुरझाना चुप-चाप ?
अभिशापों की इति होगी
इस से अपने आप ?
नहीं, नहीं यह छलना है,
बार बार फिर जलना है,
अन्तिम अन्त नहीं है इस का

कह सकता है कौन ?
सोच रहा हूं मौन !

(२)

मुक्ति मुक्ति सब कहते हैं,
पर दूर मुक्ति का धाम,
जग में केवल दौड़-धूप है,
नहीं शान्ति का नाम,
यहाँ तो टुकड़ों पर तुलता है,
मानव का आदर्श,
घेर रहा है प्रतिपल सब को
यह जीवन-संघर्ष।
ढूंड रहा हूं मैं पथ अपना
अन्धकार के बीच
कौन बनेगा इस अनन्त के
मेरे मग का मीत ?
इस लम्बी पग-डग में
मेरे जग-संगी सब मौन
क्षण भर की झिल-मिल भी जग की

दीख रही है गौन
सोच रहा हूं मौन।

(३)

चिर अभाव की ज्वाला में,
झुलस रहा संसार,

फ़िर भी फैल रहे हैं चारों,
पाप-ताप साकार,
इसे समझ लूं भूल कि–
ममता माया का अभिशाप ?
जहाँ उलझ कर भूल चुका हूं
मैं भी अपना आप,
शाश्वत सुख है कहाँ ? यहाँ तो
केवल उसकी आस
ओस कणों से मिट पाई क्या
कभी किसी की प्यास ?
ललक रही हैं फिर भी आँखें
इन्द्र जाल की ओर
रीत बनी है यही जगत् की

इसे मिटाये कौन ?
सोच रहा हूं मौन।

(४)

अन्धकार ही बढ़ता है
आता मेरे पास,
है प्रकाश का लेश नहीं,
जो हो इस का सुनि रास।
कौन सुनेगा मेरी भीषण–
करुणा की झंकार ?
सब तो झूम रहे हैं अपने,
सुख में ही साकार,

आग दबा कर सूने उर में,
घूम रहा हूं निर्जन देश
आशा के सब फूल लुट चुके,
शूल बचे हैं शेष,
मेरी उर-वीणा का स्पन्दन,
जिस में प्राणों का है क्रन्दन,
राग-रागिनी भर कर नूतन

झंकृत कर दे कौन ?
सोच रहा हूँ मौन ।

●

—(कु०) शकुन्तला

किसने दुनिया आज बदल दी ?

मेरे पथ के शूल सखी हैं
आज मुझे फूलों से कोमल

मेरे उर के शत-शत क्रंदन
आज बने हैं मीठे गायन !
आंसू की बूंदें हे आली
अमृत की वर्षा—सी लगतीं
हृत्तल की तीखी पीड़ाएँ
स्मिति की मृदु रेखा-सी जगतीं
जाने कौन बसा अन्तर में
किस ने दुनिया आज बदल दी
एक 'सुधा का घूँट' पिला कर
विष की गागर रीती कर दी।

—यश शर्मा

प्यार में आँसू भी होते हैं !

वही हमें ठुकरा देते हैं,
जिन की हम पूजा करते हैं
फिर भी मन की बात मान कर
उसी डगर पर हम चलते हैं
चाँद निशा का हो जाता है, प्राण चकोरी के रोते हैं
प्यार में आँसू भी होते हैं !

कितने निष्ठुर हैं वे आली
कैसी निर्ममता है उन की
फिर भी हम राह देख रहे हैं–
चिर सुन्दर की, चिर यौवन की
हम बैठे हैं दीप जलाये, वे सुख शय्या पर सोते हैं
प्यार में आँसू भी होते हैं !

रूप, चाँद की शीतल किरणें
यौवन, इक जलती ज्वाला है

इन दोनों का हास मधुर है
पर, मृत्यू देने वाला है
दीप-शिखा मुस्काती रहती, परवाने जीवन खोते हैं
प्यार में आँसू भी होते हैं!

●

—चन्द्र कान्त जोशी

जीवन गीत !

अभी मुझे जीना है !

इन बेलों पौधों की खातिर जिन पर नन्हें फूल खिले हैं
इन कलियों गुन्जों की खातिर जिन के मुखड़े अभी धुले हैं
जीना उन के लिये मुझे है जिन को हसरत है जीने की
सुधा मुझे देनी है उनको कड़वा घूंट मुझे पीना है !

अभी मुझे जीना है !

माता की गोदी में हंसते रोते अभी जिन्हें पलना है
अपने पैरों पैरों गिरते-पड़ते अभी जिन्हें चलना है
मसें नहीं भीगी हैं जिन की, जिन को प्याराबालापन है
उन भोले भाले बच्चों के नाज़ुक ज़ख्म मुझे सीना है !

अभी मुझे जीना है !

उन नीड-घरौंदों की खातिर जिन में नन्हा नन्हा जीवन,
उन नूतन जोड़ों की खातिर मचल रहा जिन का मधु-यौवन,
मीठे सपनों की दुनियाँ में है नींद जिन्हों की गहरी लम्बी—
उन सपनों की सुन्दर लड़ियों में जड़ना मुझे नगीना है !

अभी मुझे जीना है !

गीतों की टूटी कड़ियों में कुछ छन्द सजाना है बाकी
जो टूट गिरे हैं माला से वह मनके लाना है बाकी
कल होगा जो संसार नया बस उसकी नींव उठानी है
श्रम करना उस के लिये मुझे कुछ देना खून-पसीना है !
अभी मुझे जीना है !

●

—सुभाष भारद्वाज

गीतकार !

मैं तो अलबेला गीतकार

मैं आशा दुल्हन के मन की
उसके नव-सुख की परिभाषा
स्मित हूँ उसके मृदु अधरों का
मैं प्रथम-मिलन की अभिलाषा
मैं परिचित लहरों से, उर में उसके जो नचतीं। बार बार
मैं तो अलबेला गीतकार !

आभूषण चाँद सितारों के
पहनाता अपने गीतों को
मैं उस बिरहन के दृगजल से
नहलाता अपने गीतों को
जो राह देखती प्रियतम का शीतल आहों से पथ बुहार
मैं तो अलबेला गीतकार !

लख कर मानव की आँखों में—
आँसू, जब मैं रो देता हूं

घायल उर के घावों को जब
खारे जल से धो देता हूँ
मिल जाते खोये छन्द मुझे गीतों को मिल जाता प्रसार
मैं तो अलबेला गीतकार !

जाता जब दूर पहाड़ों पर
सुनने को झरनों की कल कल;
इन गीतों के बल पर जाता
मैं फाँद अभावों के दल-दल
स्वच्छन्द विहंगम-सा मेरा भावुक मन उड़ता डार डार
मैं तो अलबेला गीतकार !

●

—मोहनलाल 'निराश'

पूरे चाँद की रात

पथराई यादों को सरका
इधर-उधर को
पल भर
तिल भर —
अरे, उगा है
सपन उगा है
दिवसों, दिवसों बाद उगा है :
चाँद उगा है !

—(फरवरी १४, १९६०)

●

—पृथ्वीनाथ 'मधुप'

गीत

आज मेरी मूक वाणी !
धधकते अङ्गार उर में, जल रही मेरी जवानी !

उड़ चले आशा—विहग-गण
जल रहा है भाग्य-उपवन
आह ! मेरी ज़िन्दगी अब बन गई उलझी कहानी !

चुक गये हैं कोष दृग के
क्या मिला इन मोतियों से
वेदना, सिहरन, कसक—बस रह गई है ज़िन्दगानी ?

हो गये सब स्वप्न सपने
हो गये सब दूर अपने
काल ! तेरी गति अभी तक हाय थी मैंने न जानी !

दे रहा हूँ भेंट जीवन
और क्या देता अकिंचन
मौत ! आ, ले अब तुझे यह चिर-विरह की लघु निशानी !

आज मेरी मूक वाणी !
धधकते अङ्गार उर में, जल रही मेरी जवानी !

—पद्मा दीप

जीवन का संगीत मधुर है

कट जातीं हैं दुख की घड़ियां
आशा की स्वर लहरी सुन कर
काली रात में छिपा हुआ है
ऊषा काल का रक्तिम अम्बर
धरती का संघर्ष-प्रिय मन
सदा रहा है आशावादी
अम्बर के तारों से जिसने
अपनी निश्चित राह मिलादी
रात्रि की अन्तिम वेला में
प्रात-विहग का कंठ मुखर है
धरती के कण कण में झंकृत
जीवन का संगीत मधुर है।

सदियों से जाना पहचाना
अम्बर देख रहा है कब से
युगों युगों से विह्वल आतुर
धरती मिलने को अम्बर से

नभ से उतरा मन्द समीरण
तारों का सन्देश सुनाने
"एक पदार्थ के ही टुकड़े ये
अब तक बिछुड़े रहे अजाने!"
मिलनातुर धरती ने अपना
नभ की ओर बढ़ाया कर है।
धरती के कण कण में झंकृत
जीवन का संगीत मधुर है।

रवि की रश्मि से छूकर सहसा
कली चटक जाती है वन में
जीवन आशा भर जाती है
स्वाति बूंद चातक के मन में
धरती के कण कण में सोया
चेतन जग जीवन का स्पन्दन
मिट्टी की निश्चलता मृत्यु
ज़र्रों की गति ही तो जीवन
निर्बल मृत्यु स्तब्ध मौन है
जीवन कितना तीव्र प्रखर है।
धरती के कण कण में झंकृत
जीवन का संगीत मधुर है।

—शान्ति गुप्ता

मधुर कितना था वह संसार !

मधुर कितना था वह संसार !
नहीं पीडा का जिस में लेश,
अपरिचित थी तुमसे हे देव !
न पाया था नीरव संदेश !
कहां से, अनजाने चुप-चाप
चले आए अंतर—पट खोल,
लिए सब सुख शृङ्गार समेट
वेदना दी बदले में तोल ?

हाय ! यह उर की व्यथा अपार,
मिटा वह सोने-सा संसार ।

नयन बेसुध स्वप्नों के भार
बरसते थे मादक उल्लास,
न जानी थी यह स्नेह की रीति
न जानी थी क्या है चिर प्यास !
तुम्हीं ने निर्मम मेरे देव
दिया स्मृति का नूतन उपहार,

इसीसे भरे मेघ सम नैयन
सदा झरते आँसू की धार !

कभी देखेंगे नवल प्रभात
घिरी पावस की तममय रात !

अरुण अधरों पर मधु मुस्कान
थिरक कर दिखलाती थी लास
प्रात की प्रथम किरण कर म्लान
पुण्य का करती थी उपहास
तुम्हींने धो कर पहला रंग
आँक दी रेखा एक विषाद,
ढुलक कर बिखरा मधु तत्काल
रहा केवल कटु-सा अवसाद,

कहो कैसे ले पीडा मोल,
रखूँ प्राणों की निधि अनमोल ?

●

—शंकर शर्मा 'पिपासु'

गीत

अब तक कब मन की बात कही—

बीता प्रभात संध्या बीती थोड़ी-सी जीवन-रात रही
सुख दुख आये आंसू आये मुस्कान मधुर आ चली गई
जीवन-बेला जीवन ही सी उत्थित हो हो कर, ढली, गई
पर रुकी कहूं क्या क्यों मन में मन की वह झंझावात रही
अब तक कब मन की बात कही!

जीवन-तरि का जीवन-लहरों की भाँवरियों में घिर जाना
पतवार चाह की छूट साथ ही फिर फिर उसका तिर जाना
वे क्या जाने कितने मुझको है नियति नचाती नाच रही
अब तक कब मन की बात कही!

अब सह न सकूंगा यह पीडा, उर धर न सकूंगा अब व्रीडा
कहना चाहूं पर कह न सकूं हो क्षमा! न भाती यह क्रीडा
क्यों उच्छ्वासों निःश्वासों में सुख-सपनों की बरसात बही
अब तक कब मन की बात कही!

बीता प्रभात संध्या बीती थोड़ी सी जीवन रात रही

शंकर शर्मा 'पिपासु'

जग के सुख का सपना ले !

अरघट की घटमाला जैसे नीचे रीती रीती जाती
आती ऊपर जीवन भर भर सरसाती जगती का जीवन
ऐसे ही तुम नहीं समझना पतन हुआ है कहीं तुम्हारा
पतन हुआ है नहीं तुम्हारा, पतन हुआ है इच्छाओं का
पतन हुआ है अरमानों का, इच्छाएं बदला करती हैं
औ' अरमान मचलते रहते !
पतन हुआ जो पतन रहे तो, पत रखने की यही रीत है
जीत जीत कर गए हार फिर हार हार हो गए जीत है
पतन हुआ था तुलसी का पर हुलसी हुलसी तुलसी पा कर
जिसने गाया गीत राम का, अमर हुए तुलसी गा गा कर
अरे पतन में ही जीवन का जीवन है ; जीवन का निर्झर
जैसे सागर में हैं मोती, जैसे धरती में है सोना, जैसे धरती में
है लोहा!
पतन अगर निश्चित ही है तो सागर में जा बैठो नीचे
धरती को भी नित्य कुरेदो ; तुम्हें मिलेंगे मोती, सोना, लोहा जो
जग का धन प्यारा

जिससे जीवन जीवन बनता, जिससे यौवन यौवन बनता, जिस
से सुखी सदा हो जनता

जिससे मन का सुमन खिलेगा !

कब तुमने यह सोचा भी है ? कब निश्चेष्ट रह सका कोई पल
भर को भी ?

फिर क्यों तुमने केवल एक पतन के कारण है अपने मन को यों
मारा ?

उठ ! उठ !! कर अब होश ज़रा कुछ रग रग में भर जोश ज़रा कुछ
अपने जीवन-घट को भर ले, अपने जीवन से जगजीवन सरस
बना दे !

हर्ष मना ले ! कितना हो दुर्द्धर्ष ज़माना फिर भी निज उत्कर्ष
बना ले !

कुप बैठे रहने पर कोई कब जग का सम्मान पा सका ?
चुप बैठे रहने पर कोई कब है गौरव-गान गा सका ?
गा ले फिर गौरव का गाना, पा ले फिर निज मीत पुराना
मीत पुराना जो पाना है, गीत अमरता का गाना है, तो निज
भुज-बल को अपना ले

फिर जग के सुख का सपना ले !

●

कवि-परिचय

सत्यवती मल्लिक (१९०६–)

पता : ५/९० कनाट सर्कस, नई दिल्ली

व्यवसाय : लेखन

कृतियां : दो फूल, दिन रात, वैशाख की रात, पान सुपारी (कहानी संग्रह), अमिट रेखाएं, मानव रत्न (स्केच), सूरदास व कृष्ण (अंग्रेज़ी से अनूदित)

सर्व प्रथम प्रकाशन : दो फूल (कहानी) "विशाल भारत", १९३५ ;
'अन्तर में जो क्रीडा करते' (कविता) "हंस" १९३८

आप कश्मीर की एक ख्यातिप्राप्त साहित्य-साधिका है। कहानी के साथ साथ आप कविता में भी विशेष रुचि रखती हैं। हिन्दी के प्रचारकार्य में आपने सराहनीय योग दिया है। 'हिन्दी भवन' (दिल्ली) के संचालन में आपका भरपूर सहयोग रहा है। संकलित कविता 'हब्बा खातून' में कश्मीर की प्रकृति का संश्लिष्ट चित्रण हुआ है।

(स्व०) दुर्गाप्रसाद काचुर (१९०८–५६)

कृतियां : अश्रुकण (अर्द्धमुद्रित कविता-संग्रह) ; उत्पल (अंग्रेज़ी में एक संक्षिप्त जीवनी) ; "ज्योति" में प्रकाशित लेखमाला (१९५३—५५)

स्वर्गीय काचुर साहिब हिन्दी संस्कृत के विद्वान, कश्मीर की

संस्कृति के परिशीलक तथा कश्मीर में हिन्दी के उन्नायक थे। १९३९ में इन्होंने पृथ्वीनाथ पुष्प के सहयोग से कश्मीर का पहला हिन्दी साप्ताहिक (चन्द्रोदय) चलाया था और अपने अनुज (स्व०) दीनानाथ 'दीन' को भी हिन्दीसेवा की दीक्षा दी थी। वैसे तो कश्मीर सरकार के सचिवालय में ऊंचे पदाधिकारी थे, पर अंतिम क्षण तक साहित्य-साधना के अतिरिक्त समाज-सुधार में भी सक्रिय भाग लेते रहे। कश्मीरी कविता पर इनकी एक लेखमाला 'ज्योति' पत्रिका में तीन चार वर्ष छपती रही। संकलित 'पंकज' का छाया-वादी रूपरंग मनोरम है।

(स्व०) पुरुषार्थवती (१९११–३०)

कृतियां : अन्तर्वेदना [कविता संग्रह, (लाहौर)]

श्रीमती सत्यवती मल्लिक की छोटी बहिन थीं और श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार की पत्नी। इनकी संकलित रचनाओं पर महादेवी का प्रभाव स्पष्ट है, फिर भी इनकी मौलिक प्रतिभा से इनकार नहीं किया जा सकता। भावुकता का स्वर अत्यधिक तीव्र होते हुए भी आह्लादक है। अठारह-उन्नीस वर्ष की अल्पावस्था में भी इस कोटि की रचना असाधारण कवित्वशक्ति का ही परिचय देती है।

पृथ्वी नाथ पुष्प (१९१७–)

पता : गुगजी बाग, श्रीनगर

व्यवसाय : शिक्षाविभाग में असिस्टैंट डाएरेक्टर, रिसर्च एण्ड पब्लिकेशनज श्रीनगर

सर्वप्रथम प्रकाशन: स्वर्गीय प्रेमचन्द्र (लेख) 'प्रताप', श्रीनगर, १९३६; 'दो दृश्य' (कविता) 'प्रताप', श्रीनगर, १९३७; अहिंसा (कहानी) 'प्रताप' श्रीनगर १९३७

आप कश्मीरी भाषा और साहित्य, कश्मीर में संस्कृत साहित्य, कश्मीर के सांस्कृतिक इतिहास, कश्मीर के लोकसाहित्य, आदि पर

आप खोजपूर्ण लेख लिखते रहे हैं। 'पंत' आदि की कुछ हिन्दी कविताओं का कश्मीरी में तथा कई कश्मीरी कविताओं का हिन्दी में रूपांतर कर चुके हैं।

सुभाष भारद्वाज (१९२९–)

पता : पीरमिट्ठा, जम्मू

व्यवसाय : अध्यापन

कृतियां : ताण्डव (कविता संग्रह)

सर्वप्रथम प्रकाशनः 'जनरव' (हिन्दी मिलाप, लाहौर, १९४५)

आप हिन्दी के जाने-पहिचाने कवि हैं। आपकी कविता में जनता की धड़कन प्रतिध्वनित है। प्रगतिशील धारा की सभी विशेषताएं आपकी कविता में समाई हुई हैं। आपके गीत भी बड़े मार्मिक और संवेदनशील हैं। आपकी कविता एक गम्भीर मगर वेगवती नदी की तरह प्रवहमान एवं गहन है। पत्र-पत्रिकाओं में आपकी रचनाएं प्रायः निकलती हैं।

पृथ्वीनाथ 'मधुप' (१९३४–)

पता : गांव डब; तहसील गान्दर्बल, कश्मीर

व्यवसाय : अध्यापन, महिला महाविद्यालय, श्रीनगर

सर्वप्रथम प्रकाशनः तुम कहां हो ? (१९५०)

आप अभिनव हिन्दी लेखकमण्डल, श्रीनगर के संस्थापकों में से तथा संचालक हैं। कुछ हिन्दी कविताओं का कश्मीरी अनुवाद कर चुके हैं। आजकल आप हिन्दी के प्रचार एवं प्रसार में अग्रसर हैं। आपकी कविता में प्रेम की पीडा और निराशा की मात्रा अधिक है।

दीनूभाई पन्त (१९१७)

पता : चौगान फत्तू, जम्मू

व्यवसाय : बी. डी. ओ. (कश्मीर सरकार)

कृतियां : सरपंच, संजाली (डोगरी नाटक) गुत्तलूं, मंगू दी छब्बील, वीर गुलाब, साढ़ा बापू, दादी ते मां, (डोगरी-कविता-संग्रह)।

सर्वप्रथम प्रकाशनः पथ पर दीप जलाने वाले ! ('उषा', जम्मू, ९१४२)

१९४७ से पूर्व आप जम्मू के उदीयमान हिन्दी कवियों में एक विशेष स्थान बना चुके थे। बाद में आप डोगरी-साहित्य-रचना की ओर उन्मुख हुए और अब उसी क्षेत्र में काम कर रहे हैं।

चन्द्रकान्त जोशी (१९२८–)

पता : पीर मिठ्ठा, जम्मू

व्यवसाय : अध्यापन

कृतियां : दुःख-सुख (कविता संग्रह)

सर्वप्रथम प्रकाशनः भारत-भिखमंगों की दुनियां, ('विश्वबन्धु', लाहौर; १९४४)

आप एक लब्धप्रतिष्ठ हिन्दी कवि हैं। हिन्दी के समान ही आप को उर्दू भाषा पर भी अधिकार है। संवेदना की तीव्रता, भावगाम्भीर्य तथा भाषा-लालित्य आपकी रचनाओं की विशेषता है। हिन्दी-उर्दू पत्र-पत्रिकाओं में आपकी कृतियां प्रायः दृष्टिगत होती हैं।

श्यामदत्त पराग (१९२८–)

पता : रेडियो कश्मीर, जम्मू

व्यवसाय : लेखन और प्रसारण

प्रथम प्रकाशनः व्योम के ये दीप हैं किसने जलाये ('भारती', जम्मू; १९५७)

आप एक तरुण कवि हैं और काव्य-साधना में संलग्न हैं। आप के कुछ रूपक और गीत जब-तब रेडियो पर प्रसारित होते रहते हैं तथा स्थानीय पत्र-पत्रिकाओं में निकलते रहते हैं।

मोहनलाल 'निराश' (१९३४–)

पता : डलहसनयार, श्रीनगर

व्यवसाय : लेखन और प्रसारण (प्रसार विभाग)

सर्वप्रथम प्रकाशनः शान्तिविहग ('नया समाज', कलकत्ता १९५७)

कश्मीर के इस युवक कवि के कुछ संकलन अप्रकाशित पड़े हैं। हिन्दी के साथ साथ आप कश्मीरी साहित्य में भी विशेष रुचि रखते हैं और आपने कविवर पन्त की कुछ कविताओं का कश्मीरी में अनुवाद किया है। आपकी रचनाओं में भावपक्ष तथा कलापक्ष का संतुलन मिलता है।

यश शर्मा (१९२९–)

पता : गान्धी नगर, जम्मू

व्यवसाय : प्रसार विभाग में एनाऊंसर, रेडियो कश्मीर, श्रीनगर

आप अपने मधुर गीतों के लिये काफ़ी लोकप्रिय हैं। आपके गीतों में डुग्गर की लोक-संस्कृति का संगीत छलक उठा है। प्रेम की मादकता और हल्की हल्की जलन आपके गीतों की मनोरम विशेषता है।

शशिशेखर (१९३५—)

पता : वजीर बाग, श्रीनगर

व्यवसाय : लेखन और सम्पादन (सूचना विभाग)

आपकी गणना कश्मीर के उत्कृष्ट हिन्दी कवियों में होती है। आप प्रयोगवादी धारा से विशेष प्रभावित हैं, नई कविता खूब करते हैं। पत्र-पत्रिकाओं में आपकी रचनाएं बराबर निकलती रहती हैं।

रतनलाल 'शान्त' (१९३८—)

पता : ५५, बडयार बाला, सेकंड ब्रिज, श्रीनगर

व्यवसाय : अध्यापन, लेक्चरर एस. पी. कालिज, श्रीनगर

सर्वप्रथम प्रकाशन : वर्षा (कविता) १९५३

आप इलाहाबाद के प्रयोगवादी स्कूल के अनुगामी हैं। कविताओं

के अतिरिक्त आप कहानियां और लेख भी लिखते हैं। कश्मीर की लोक-संस्कृति आपका प्रिय विषय है।

गङ्गादत्त 'विनोद' (१९२१–)

पता : मुहल्ला पहाड़ियां, जम्मू

व्यवसाय : अध्यापन, संस्कृत लेक्चरर, गवर्नमेंट कालिज, सोपुर

प्रथम प्रकाशन : एक हिन्दी कविता (सप्ताहिक 'दीपक' जम्मू; १९४०)

आपके कुछ गद्य-पद्य-संग्रह अभी अप्रकाशित पड़े हैं। हिन्दी कविता लिखने में आपकी विशेष रुचि है। स्थानीय पत्र-पत्रिकाओं में आपकी रचनाएं पढ़ने को मिलती हैं। संस्कृत के विद्वान हैं, हिन्दी साहित्य-सृजन की ओर प्रयत्नशील रहते हैं।

शकुन्तला सेठ (१६२४–)

पता : प्रिंसिपल, महिला विद्यापीठ, जम्मू

व्यवसाय : अध्यापन

आप जम्मू क्षेत्र की हिन्दी साहित्य-साधिकाओं में अग्रणी रही हैं। कई वर्ष तक आपने 'उषा' मासिक (जम्मू) का सफलतापूर्वक सम्पादन किया। 'हिन्दी साहित्य मण्डल' जम्मू की प्रगति में आप का विशेष योगदान रहा है।

पद्मा 'दीप' (१९४०—)

पता : द्वारा श्री वेदपाल 'दीप' जम्मू

कृतियां : डोगरी कविताएं

आप मूलतः डोगरी की होनहार कवयित्री हैं। कुछ वर्षों से निरन्तर रुग्ण होते हुए भी साहित्यसाधना में लगी रहती हैं। हिन्दी में भी आपने कुछ मधुर गीत लिखे हैं।

श्रीमती शान्ति गुप्ता (१९१९-)

पता : माडल एकेडमी, जम्मू

व्यवसाय : अध्यापन और विद्यालय-संचालन

कृतियां : उर्मिला (कविता संग्रह) आदि।

जम्मू की हिन्दी-साहित्य-साधिकाओं में आपका नाम आदर से लिया जाता है। साहित्य के अतिरिक्त आप समाज-सेवा में भी सक्रिय भाग लेती हैं। कश्मीर के प्राकृतिक सौन्दर्य से आप विशेष आकृष्ट हैं।

शंकर शर्मा 'पिपासु' (१९१७-)

पता : गवर्नमेंट हाई स्कूल, हीरानगर

व्यवसाय : सरकारी नौकरी (अध्यापक)

आप जम्मू प्रान्त के पुराने लेखकों मेंसे हैं। बाल्यकाल से ही कविता की साधना करते रहे हैं।

●

प्रथमपंक्ति-निर्देशिका

पंक्ति	पृष्ठ

●

कवि-निर्देशिका

●